आरएनआई नं. : RAJHIN/2014/59353
डाक पंजी सं. : RJ/UD/29-128/2015-2017
प्रेषण :- कार्यालय शास्त्री सर्कल पोस्ट ऑफिस ,उदयपुर
प्रेषण दिनांकः-प्रतिदिन

मन के जीते जीत सदा

दैनिक

● मुद्रण तारीख - 20-05-2016 ● अंक- 530 ● तारीख - 21 मई 2016, वैशाख शुक्ल -15 ● शनिवार ● उदयपुर ● कुल पृष्ठ-02 ● मूल्य-1 रूपया ● पृष्ठ-01

अनमोल वचन (सत्यसाईं बाबा)

दूसरों के सुख-दुःख में हिस्सा बटाओ।

अमृत वचन

दुःख क्रोध पर उद्वेग नहीं, सुख में जो निस्पह रहता है।
भय, क्रोध, राग हो गये नष्ट, स्थिरबुद्धि वही नर होता है।।
शुभ अशुभ वस्तु को पाकर, जो राग द्वेष नहीं करता है।
वह स्नेह रहित योगी मानव, स्थिरबुद्धि जगत में होता है।।
ज्यों कछुआ अपने अंगों को, अपने में समेटे रहता है।
विषयों से अपनी इन्द्रियों को, स्थिर बुद्धि खींचे रहता है।।

दोहावली

कटु-वचनों की धार से, बने जीभ तलवार।
अच्छा है चुप ही रहें, बना मौन आधार।।

भावार्थ- हमारे अपने कटु वचन ही हमारी जीभरूपी तलवार बन जाती है। इसलिए अच्छाई इसी में है कि हम चुप ही रहें, हमारा आधार मौन हो जाए। भलाई भी इसी में है और नीति भी यही कहती है।

अमृत वचन - कटु वचनों में जीभ तलवार की धार के समान हो जाती है।

स्तंभेश्वर महादेव मंदिरः जहाँ समंदर करता है भगवान शंकर का अभिषेक

गुजरात के स्तंभेश्वर महादेव मंदिर की एक बड़ी ही खास बात है जिसके लिए यह मंदिर दुनिया भर में जाना जाता है। इस अलौकिक मंदिर में भगवान शंकर का जलाभिषेक करने खुद समंदर आता है। यह मंदिर गुजरात राज्य के वड़ोदरा शहर से लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कवि कम्बोई गांव में है।

यह मंदिर अरब सागर में खंभात की खाड़ी के किनारे स्थित है। समुद्र के बीच में स्थित होने की वजह से इसकी खूबसूरती देखने लायक है। समुद्र के बीच स्थित होने के कारण न केवल इस मंदिर का सौंदर्य बढ़ता है बल्कि एक अनोखी घटना भी देखने को मिलती है। यहां समुद्र देवता स्वयं भगवान शंकर का जलाभिषेक करते हैं। लहरों के समय शिवलिंग पूरी तरह से जलमग्न हो जाता है और यह परंपरा सदियों से सतत चली आ रही है। यहां स्थित शिवलिंग का आकार चार फुट ऊंचा और दो फुट के घेरे वाला है।

यह मंदिर भारत के सबसे रहस्यमय मंदिरों में से एक है। स्तंभेश्वर महादेव मंदिर को गायब मंदिर भी कहा जाता है। इस मंदिर को गायब मंदिर कहने के पीछे एक अनोखी घटना है। वह घटना वर्ष में कई बार देखने को मिलती है जो मंदिर को हमेशा सुर्खियों में बनाए रखती है।

इस मंदिर के दर्शन केवल कम लहरों के वक्त ही किए जा सकते है। ऊंची लहरों के समय यह मंदिर डूब जाता है। पानी में डूब जाने के कारण यह मंदिर दिखाई नहीं देता, इसलिए इसे गायब मंदिर कहा जाता है। ऊंची लहरें खत्म होने पर मंदिर के ऊपर से धीरे-धीरे पानी उतरता है और फिर मंदिर दिखने लगता है।

पौराणिक मान्यता के मुताबिक स्तंभेश्वर महादेव मंदिर में स्वयं शिवशंभु (भगवान शंकर) विराजते हैं इसलिए समुद्र देवता स्वयं उनका जलाभिषेक करते हैं। यहां पर महिसागर नदी का सागर से संगम होता है। स्तंभेश्वर महादेव मंदिर में दूर-दूर से श्रद्धालु समंदर द्वारा शिवशंभु के जलाभिषेक का अलौकिक दृश्य देखने के लिए आते हैं।

कार्य में आनन्द लेवें

भावनाओं का हमारे जीवन पर और हमारे काम पर बहुत ज़बरदस्त प्रभाव पड़ता है। जब कोई अच्छी भावना से भोजन बनाता है, और बनाकर खिलाता है, तो उस भोजन का स्वाद अपने आप बदल जाता है।

जब हम अच्छी भावना से कोई काम करते हैं, तो उस भावना से जुड़े हुए रस हमारे पूरे शरीर में प्रवाहित होते हैं। इसलिए हमारे पूरे शरीर में एक नई ऊर्जा का संचार हो जाता है, जो हमें थकने नहीं देती।

जब हम खुश होकर काम करते हैं, तो यह उनको भी खुशी देता है जो हमें काम करते हुए देख रहे हैं। इस प्रकार हम एक प्रकार से

शांति छिपी है-हमारे मन में

क्या आप शांति चाहते हैं? यदि हाँ, तो यह जरा भी कठिन नहीं है। इसका बहुत छोटा-सा उपाय है। उपाय यह है कि इसकी खोज करना बन्द कर दिया जाए। इसके सारे बाहरी आधारों को गिरा दीजिए और अब इसे अपने अन्दर ढूँढ़ना शुरू कर दीजिए। देखिए, आपकी उससे मुलाकात होती है या नहीं। निश्चित रूप से होगी। देर भले ही हो जाए, लेकिन होगी जरूर।

शांति के लिए न तो किसी साधना की जरूरत है और न ही किसी दर्शनशास्त्र की। यह तो महज हमारे मन की एक स्थिति भर है। जैसे ही हम मन की चंचलता पर नियंत्रण पा लेते हैं, अपने अन्दर शांति के लिए कैनवास तैयार कर लेते हैं और उस पर अप्रतिम सौन्दर्य की लकीरें उभरनी शुरू हो जाती हैं। सच यही है कि जब हम अपने इसी आंतरिक सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं, तो यही सौन्दर्य-दर्शन हमारी शांति का कारण बनता है।

यहाँ हमें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि शांति कभी भी शून्य में नहीं मिलती। इसे भी कोई-न-कोई आधार चाहिए ही। निश्चित रूप से अपने अन्तर्मन में किसी सौन्दर्य की अनुभूति करना सबसे उत्तम, सबसे पुख्ता और सबसे सरल आधार हो सकता है। इसलिए यदि आपको शांति चाहिए, तो आंतरिक सौन्दर्य की खोज कीजिए, शांति की नहीं। बाहरी खोज से यह मिलने वाली नहीं है।

मन का नियंत्रण

सम्पूर्ण सृष्टि सरलता और बुद्धिमत्ता के मंगलमय लय से प्रकृति के नियमों पर चल रही है। यही मंगल ही दिव्यता है। शिव वह सामंजस्यपूर्ण सरलता है जो कोई नियन्त्रण नहीं जानती।

शिव का विपरीत है वशी, यानि नियन्त्रण। नियन्त्रण मन का होता है। नियन्त्रण का अर्थ है दो, द्वैत, कमज़ोरी। वशी का अर्थ है स्वाभाविकता से कुछ करने के बजाय दबाव द्वारा कुछ करना। प्रायः लोग समझते हैं कि उनका जीवन, परिस्थितियाँ उनके नियन्त्रण में, उनके वश में है, परन्तु नियन्त्रण एक भ्रम है। मन में क्षणिक ऊर्जा का दबाव नियन्त्रण है। यह है वशी।

शिव इसके विपरीत है। शिव ऊर्जा के स्थायी और अनन्त स्त्रोत है, सत्ता की अनन्त अवस्था, वह एक जिसका कोई दूसरा नहीं। द्वैत भय का कारण है और वह सामन्जस्यपूर्ण सरलता द्वैतवाद को विलीन करती है। जब एक क्षण पूर्ण हैं, सम्पूर्ण हैं, तब वह क्षण दिव्य है।

वर्तमान क्षण में होने का अर्थ है न भूतकाल का पछतावा, न भविष्य की कोई माँग। समय रुक जाता है, मन रुक जाता है। -श्री श्री रविशंकर जी

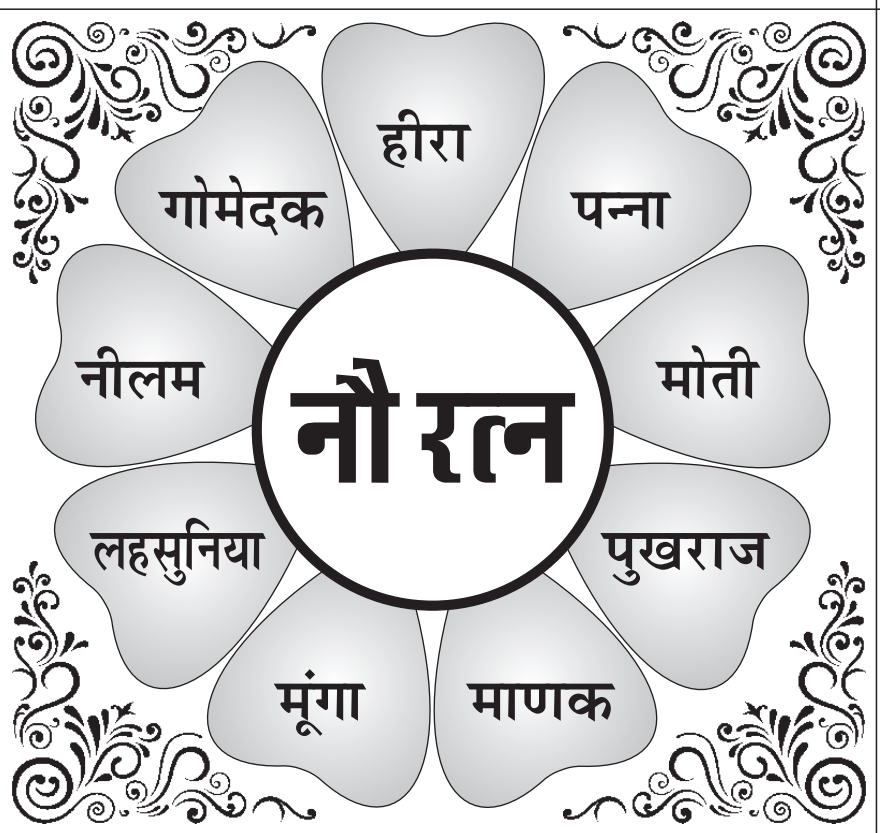

मानव मन के बोल

वसुधैव कुटुम्बकम के भावों के साथ

गतांक से आगे.....

तो मैं आपको निवेदन कर रहा था कि मैं लंच में जाता, फिर शाम को जाता था। एक दिन मैं जा नहीं पाया, तो रात को 11बजे जब मैं नींद में सो गया था, तो खट्-खट् दरवाजे की आवाज आई, जैसे कोई दरवाजा खुलवाने की कोशिश कर रहा है। मैंने सोचा कौन आया होगा इतनी रात को 11 बजे? लगता है पोस्ट ऑफिस का काम आ गया है। दरवाजा खोला तो वो बा साहब थे, जिनसे मैं दो-तीन दिन पहले मिला था। वो बोले बाबूजी-बाबूजी, आठ वर्षीय बेटी कान्ता तो रो रही है। कहती है कि बाबूजी नहीं आये, नाराज हो गये हैं। क्या करूँ? रोटी भी नहीं खा रही है, पानी भी नहीं पी रही है, बहुत दुखी हो रही है, रो रही है। बाबूजी क्या करूँ? मैं तो आपको बुलाने आया हूँ-रात को, आप चलोगे तो रोटी खा लेगी। मैंने कहा-देखो, कान्ता का ये मेरे से पूर्व जन्म का रिश्ता है। मैंने कहा-बाबूजी, अभी चलता हूँ। तुरन्त उनके साथ गया और कान्ता से जब मिला तो मैंने कहा-बेटा, मेरी गलती हो गई, मैं कुछ काम में लग गया था। हालांकि दूसरा कोई इम्पोर्टेन्ट काम नहीं था, जितना सेवा का काम था। "सेवा परम् गहनो" सेवा के लिए कहा गया है-

"सेवा धर्म महान् है, अति प्राचीन विचार।
सेवारत इन्सान ही, समझा जीवन सार।।"(40)

सेवारत इंसान ही है तो रात को 11 बजे पहुँचा। उस बिटिया ने मुझे देखा तो उसकी आँखों में चमक आ गई। वो 8 वर्षीय बेटी मेरे से लिपटी, मुझे लगा मेरी पुत्री मिल गई है, कल्पना और प्रशान्त को छोटी बहना मिल गई है। ये ही तो सम्बन्ध हैं- बाबूजी, एक दिन में चेतना है।

उसकी आँखों के आँसू और दुःखी के दुःखों को बाँट लो, मूल मंत्र है जिन्दगी का-प्यार दो और प्यार लो। उसमें कोई शर्तें नहीं होती बाबुड़ा। ये अग्रवाल है इसलिए प्यार देना है, ये बड़ा-बड़ी, अभी भी भारत में उजला वरण, क्या उजला होता है?

क्रमश अगले अंक में ...

सुखी-दाम्पत्य

"शादी एक ऐसी किताब है जिसका पहला अध्याय कविता में लिखा जाता है और शेष अध्याय, गद्य में।"

क्यों होता है ऐसा? क्यों बसंत के बाद घोर निदाघ आ गया? कारण और कुछ नहीं, बस, छोटा-सा मतभेद हुआ, दोनों ने तूल दे दी, अहंकार अड़ गया कि ऐसा हो कर रहेगा। सामने अखाड़े पर ललकारता अहंकार कहने लगा- "हर्गिज़ नहीं हो सकता!" बस, यहीं दो अहंकार टकरा गए- ज़ोर से टकराए, रह-रह कर टकराए, उफन-उफन कर टकराए। साथ दोनों अब भी हैं, पर साथ रहकर भी जैसे कोसों दूर हैं, मिलन शाश्वत विरह की गोद में पल रहा है। विवाहित जीवन की सफलता बड़े-बड़े सिद्धांतों पर नही, बल्कि छोटी-छोटी बातों पर आश्रित है। बुद्धिमानी यही है कि काँटे अंदर तक चुभें, उससे पूर्व ही निकाल लिए जायँ, दिलों में कोई ऐसी बात न आने दी जाय कि संयुक्त जीवन में किसी प्रकार की बाधा पड़े। आज जब संसार में संघर्षों की तेज़ी से बाढ़ आ रही है, ऐसे समय मानव के लिए मधुर स्पर्श, अपनेपन और सहानुभूति की आवश्यकता भी बढ़ गई है। विवाह इसी समस्या को सुलझाने की दिशा में एक स्वस्थ समाधान है!

स्त्री हो या पुरुष, नियति ने संसार का नियम ही इस प्रकार बना दिया है कि देर-सवेर दोनों को एक दिन विवाह के पवित्र सूत्र में बँधना ही पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब तरुणाई इठलाती हुई हमारे जीवन -द्वार की कुण्डी खटखटाती है तब यही मामूली, उजड़ा-उजड़ा और सूना-सा जीवन शत्शत् आकांक्षाओं से पूर्ण हो उठता है, ज़िन्दगी के खुले आकाश में अचानक सैकड़ों रंगीन सपनों की जगमगाहट चमक उठती है, ऐसा लगता है जैसे मरुभूमि में बहार आ गई हो। सब कुछ हरित हो जाता है, सब कुछ रंगीन! अनायास स्वप्नलोक में किसी से मिलने को मन अकुलाने लगता है। किसी को प्यार करने का मन करता है, किसी के द्वारा प्यार किये जाने की इच्छा उभरती है; किसी को लूटने और किसी पर लुट जाने की तमन्ना दिल में उछलने लग जाती है।

यही वह संधि-काल है जब यह आभास होने लगता है कि यह उमड़ता हुआ जीवन अकेले-अकेले स्वाद लेने के लिए नहीं है। ऐसा लगता है कि अलग रहने की, एकांत की वेदना अब और सही न जाएगी। मन एकांत में कहताः "काश! मेरे साथ कभी हँस सकें, हँस तो दूसरों के साथ भी सकते हैं, पर जिसके साथ कभी रो सकें। वह रोना जिस पर जगत की सारी हंसी निछावर है; वह रोना जिसमें खोकर भी मानव अपने को पाता है; लुट कर भी धनी होता है; डूब कर भी उभर जाता है!"

विवाह इसी एक से दो और दो से एक होने की मूल कामना का सामाजिक या मर्यादित क्रियात्मक रूप है। प्यार तो अविवाहित रह कर भी किया जा सकता है, परंतु हम जीवन का जहाँ तक अंत है, वहाँ तक के लिए, एक से दो और दो से एक नहीं हो सकते। प्रेम की शक्ति तो अब भी रहती है एक उद्दात शक्ति, एक उत्छृंखल बाधा बंध-विहीन शक्ति, कूलों- कछारों को अपने में डुबाती चलने वाली धारा की शक्ति! वही धारा जब बांध में बदल दी जाती है तब उसकी शक्ति से अनेक उपयोगी काम किए जा सकते हैं; उससे निकलने वाली विद्युत घर-घर मुस्कुराती फिरती है; वह खेतों को लहलहाती है; कारखानों को जगमगाती है, ऊसरों को हरा-भरा करती है और समाज के जीवन को अनेकानेक रूपों में सार्थक करती है।

विवाह भी और कुछ नहीं-धारा पर बाँध बाँधने जैसी चीज़ है। यह प्यार से उमड़ते स्त्रोत का बाँध है; उड़ती, भागती, पकड़ में आने वाली अत्यंत मौलिक शक्तिशाली भावना और वासना को अधिकाधिक उपयोगी बनाकर बंधनों में बाँध रखने का प्रयत्न है। इसके द्वारा दो प्राणी सुख में, दुख में सदा एक साथ रहने की, एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान होने की प्रतिज्ञा करते हैं। पर कितने दुर्भाग्य की बात है कि हर साल संपन्न होने वाले अगणित विवाह में से अधिकांश के संयुक्त जीवन, उनके आनंदित जीवन की दीवारें तुरंत ही चटखने-फटने लगती हैं; उनमें दरार पड़ जाती है और वही जीवन जो आरंभ में वसंत की मधुरता-सा हँसता था, दुर्दिन की अँधियारी में जाता है। वही पति जो प्राणों का सर्वस्व था, नीरस हो जाता है; और वही स्त्री जो दिल और आँखों का नशा थी, क्रूर और भयावनी लगने लगती है; वही घर जो कभी स्वर्ग के समान था, जिससे दूर रहते हुए भी प्राण बँधे रहते थे- उजड़ कर शमशान का रूप धर लेता है और काट खाने को दौड़ता है।

शायद इन्हीं लोगों की ओर इशारा करते हुए वेवली निरकल्स ने कहा है-

सम्पादकीय

मनुष्य बहुत कुछ कामनाएँ रखता है। यह चाहिए, वह चाहिए पर जो कुछ वह चाहता है, उसमें से कितना पूरा होता है? शायद नहीं के बराबर। जो चाहें सो पाएं, वाली बात इसी कारण आश्चर्यजनक लग सकती है। भला यह कैसे संभव है? हम जो चाहें सो पाएँ—कैसे हो सकता है? अधिकांश इस पर विश्वास ही न करें, पर दुनिया के एक नहीं लाखों दृष्टांत इस बात के प्रमाण हैं कि जो चाहा, सो पाया....... आखिर कैसे ?

कोई चमत्कार या जादू के बल पर नहीं, वरन् अपने अन्तःकरण की शक्ति के बल पर पाया। भाग्य या अवसर की प्रतीक्षा करने वाले लोगों को चिंतकों और मानव ज्ञान शास्त्रियों ने निकम्मा और मूर्ख माना है। भाग्य और अवसर नाम की कोई चीज नहीं होती है। 'जब भाग्य होगा अपने आप काम हो जाएगा' या अभी अवसर कहाँ आया है'।

अवसर आते ही सारा काम बन जाता है। इस तरह की भावनाएँ केवल अपनी असफलता पर परदा डालने की कोशिश है। इस तरह हम अपनी कमजोरियाँ छिपाते हैं। वास्तव में भाग्य और अवसर नाम की कोई चीज नहीं है। यह केवल मन का वहम मात्र है। कोई भी कार्य करने का अवसर या भाग्य देखना निहायत बेतुकी बात है। जो कर्मयोगी हैं, वह कभी इसकी प्रतीक्षा नहीं करते। धन कुबेर रॉकफैलर का कथन था, 'मैंने कभी भाग्य और अवसर की प्रतीक्षा नहीं की, जब भी काम की बात मन में आई, शुरु कर दिया। मैंने अपने जीवन में प्रत्येक क्षण को ही भाग्य और अवसर माना है।'

अतएव भाग्य या अवसर की प्रतीक्षा करना अपनी सफलता को पीछे फेंक देना है। हो सकता है कि जब तक इतना समय निकल जाए कि आप करने पर भी न पा सकें। यदा—कदा भाग्य के फेर में भी मनुष्य अपने जीवन को दुःख से भर लेता है।

अतएव भाग्य या अवसर की प्रतीक्षा न कर आप अपना कार्य शुरू कर दें। दूसरों को देखें — लोग उनकी प्रशंसा करते हैं—'कितना भाग्यशाली है अमुक—' 'अमुक का सितारा बड़ा बुलंद है' —पर क्या 'अमुक' के जीवन में झांकने की कोशिश की कि 'अमुक' आज जिस शिखर पर है, उस तक पहुंचने के लिए 'अमुक' ने कितना कठोर परिश्रम किया है? अमुक ने क्या—क्या संकट नहीं बर्दाश्त किए? यह तो 'अमुक' का दिल जानता होगा कि वह कैसे उस स्थान तक आया है? दूसरों का सुख, वैभव देखकर आपको ईर्ष्या होती है, पर उस सुख को भोगने वाले दिलों से पूछिए कि कैसे पाया है यह सब ?.......... ... और अपने आपको बनाए रखने के लिए उनको अभी भी क्या—क्या करना पड़ रहा है ? अतएव जब तक आप इस महत्व को नहीं जानेंगे और केवल 'अवसर', 'भाग्य' की राह देखते रहेंगे, तब तक आप कुछ नहीं कर सकते हैं।

विचार धारा

धन से बेशक गरीब रहो, पर दिल से रहना धनवान;
अक्सर झोपडी पे लिखा होता है "सुस्वागतम":
और महल वाले लिखते है "कुत्ते से सावधान"।

तेरा मंगल, मेरा मंगल, जग का मंगल होय रे : स्वामी ब्रजनन्दन

उदयपुर, । मंगलनाथ क्षेत्र, नारायण धाम खालसा में सिंहस्थ कुंभ पर्व में आयोजित नारायण सेवा संस्थान भी दिव्यांग बंधुओं के दर्द को दूर कर के उनमें प्रसन्नता बाँट रहा है। किसी के पोलियो ग्रस्त पैरों का ऑपरेशन कर के उसे पैरों पे खडा कर रहा है तो किसी को कृत्रिम हाथ—पाँव देकर जीवन में खुशियों के रंग भर रहा है। संस्थान संस्थापक डॉ. कैलाश मानव ने बताया कि शिविर में आने वाले दिव्यांग बंधुओं को स्वास्थ्य के साथ—साथ सत्संग लाभ भी प्रदान किया जा रहा है।

संस्थान अध्यक्ष प्रशान्त अग्रवाल ने बताया कि क्षिप्रा मैया की गोद में सेवा के साथ—साथ पावन कथाओं के निर्झर प्रवाह भी अनवरत जारी है। इसी कड़ी में भगवद् भक्ति का रसास्वाद कराते हुए पूज्यश्री ब्रजनन्दन जी महाराज के श्रीमुख से दो दिवसीय कथा में 'श्रीमद् भागवत कथा' का सार गोपीगीत व भजनों पर भक्तों ने खुब आनन्द लिया।

सांध्य वेला में सेवा और सत्संग के इस पर्व में पूज्य जगद् गुरू दिनेशाचार्य जी महाराज के मुखारविन्द से 'श्रीमद् भागवत कथा' के प्रथम दिवस पर महाराज ने भागवत महात्म्य की कथा का महत्व समझाया की 'कथा श्रवण करने मात्र से मनुष्य अपने जीवन की व्यथाओं से निवृत्ति पा लेता है'। संचालन कृपा व्यास ने किया।

मोक्ष का आधार

बात उस समय की है जब चीन में राजतन्त्र था और राजा वू वहाँ का शासक था। एक दिन प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु बोधिधर्म राजधानी पधारे तो राजा वू दर्शनार्थ उनके पास गया। राजा ने बोधिधर्म से कहा —'स्वामी! मैंने बुद्ध के अनेक मन्दिर बनवाए हैं, धर्म—प्रचार पर अपार धन खर्च किया है, और धर्मशास्त्र की पुस्तकें खूब बँटवायी है, अब तो मुझे मोक्ष आसानी से प्राप्त हो जाएगा ?

बोधिधर्म कुछ देर चुप रहे और फिर बोले —'नहीं, तुम्हें मोक्ष नहीं मिलेगा।' इस पर राजा ने हैरानी से कहा——क्यों स्वामी ? कहाँ कमी रही या भूल हुई जो मेरे सद्कर्मों के बावजूद मुझे मोक्ष नहीं मिलेगा ? भिक्षु बोधिधर्म गम्भीर होकर बोले—'राजन्! जब मनुष्य इस बात का बखान करता है कि मैंने यह किया, मैंने वह किया, मैं सब तरह से सक्षम हूँ, तो वह बड़ी भूल करता है, क्योंकि 'मैं' की भावना किसी कर्म को पुण्यवर्धक नहीं बनाती। 'मैं' की भावना का त्याग किये बिना अच्छे कर्म का भी पुण्य मिलना असम्भव है। इसलिए 'मैं' ग्रन्थि का त्याग ही शान्ति और मोक्ष का असली आधार है।'

दूसरों के साथ नम्रता का बर्ताव करें

कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा ओछा होता है कि वे किसी भी व्यक्ति में कभी कोई अच्छाई नहीं देखते। वे इस भ्रम को सत्य मान बैठते हैं कि प्रत्येक विषय का संपूर्ण ज्ञान उनके पास सुरक्षित हो चुका है। औरों से सदैव वक्रता, व्यंग्य और अहंकार से बात करने में ही उन्हें सुख मिलता है। किसी ने इस संबंध में ठीक ही कहा है कि "दुष्ट व्यक्ति दूसरे के सरसों के बीज बराबर दोष को भी देख लेता है, लेकिन अपने पहाड़ के बराबर दोषों को देख कर भी अनदेखा कर देता है।"

महाभारत के आदि पर्व में एक छोटी—सी कथा है। पांचाल देश के राजा यज्ञसेन का पुत्र द्रुपद स्वाध्याय के लिए भारद्वाज के आश्रम में गया। आश्रम में रहते हुए उसकी मुनिपुत्र द्रोण से घनिष्ठ मित्रता हो गई। आश्रम से विदा होते समय द्रुपद ने द्रोण से कहा—"यदि तुम कभी हमारे देश आओगे तो हम तुम्हारा हर तरह से सम्मान करेंगे और तुम्हें अपना कुलगुरु बनायेंगे।" कुछ समय बाद यज्ञसेन की मृत्यु हो जाने पर द्रुपद राजगद्दी पर बैठा। उधर उसके सहपाठी द्रोण ने भी अपनी गृहस्थी बसा ली थी, परंतु उनका पारिवारिक जीवन बेहद गरीबी और कष्ट के बीच चल रहा था। द्रोण को अनायास अपने बालसखा द्वारा दिए हुए आश्वासन की याद हो आई और वे कुछ आशा के साथ पांचाल देश की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर जब वे राजा द्रुपद के सामने गए तो उसने अनजान बन कर उनका परिचय पूछा। द्रोण ने आश्रम की मित्रता स्मरण कराई और प्रतिज्ञा भी। तब द्रुपद ने कहा—"राजा और याचक की कैसी मित्रता ? मैंने तुमसे कोई प्रतिज्ञा नहीं की।" यह उत्तर पाते ही द्रोण उल्टे पाँव लौट चले। इस अपमान का बदला लेने के लिए उन्होंने तत्काल कौरव—पाँडवों को धनुर्वेद की शिक्षा देनी आरंभ की, जिसका परिणाम यह निकला कि अर्जुन ने मुश्कें बाँध कर द्रुपद को द्रोण के सामने उपस्थित किया। परंतु कृष्ण और सुदामा की कहानी ठीक इसके विपरीत सद्व्यवहार का एक नया आदर्श हमारे सामने रखती है।

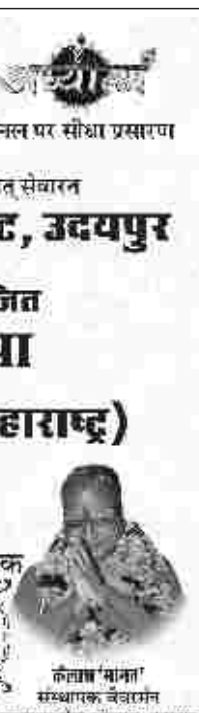

विनयशीलता और मृदुता शिष्टाचार के दो प्रधान अंग हैं। स्वभावतः विनयी आदमी में अभिमान या गर्व नहीं होता, वह अपने अंदर परितुष्ट और तृप्त रहता है। ज्यों—ज्यों ज्ञान होता जाता है, समृद्धि आती है, ज्यों—ज्यों उसकी निरभिमानता और विनयशीलता बढ़ती जाती है और वह फल से लदे वृक्ष की भाँति झुकता जाता है। मधुर स्वभाव में एक तिलिस्म है, जादू है। धन की अपेक्षा इसकी शक्ति अधिक है। यदि हम खुले आदमी बनें, दूसरों के साथ नम्रता का बर्ताव करें, हृदय में दयालुता की भावना का विकास करें, दूसरों की समुचित प्रशंसा करें, सहायता के लिए आगे बढ़ें, अपने हृदय का आनंद बाँटते फिरें, लोगों से सत्य और मीठा व्यवहार करें—तो कोई शंका नहीं कि हमारे जीवन का विकास तेजी से नहीं होगा।

भौतिकीविद्—एडविन फास्ट (अमेरिका) का मत

अत्यन्त जटिल पर्यवेक्षणों द्वारा यदि प्रतिभाशाली से भी प्रतिभाशाली वैज्ञानिक मस्तिष्कों ने सदियों तक अध्ययन करने के पश्चात् इन विभिन्न अवयवों के व्यवहार और उनकी सत्ता को पहचाना है, तो उससे सीधा परिणाम यह निकलता है कि जिस एक की बुद्धि ने इन सबकी पहले पहल रचना की, वह आज तक की मानवीय बुद्धि के एकत्रित मूल्य से भी कहीं अधिक मूल्यवान और उन सबसे कहीं अधिक बड़ी है। आज तक के अत्यन्त ग्रहणशील मस्तिष्क भी यह बात तुरन्त स्वीकार करेंगे कि प्रकृति प्रपंच के सम्बन्ध में जितना कुछ जानने को है, उसका श्रीगणेश ही अब तक मुश्किल से हो पाया है।

जब हम जीवन के उच्चतम रूपों में आते हैं तब हम देखते हैं कि किसी कार्यविधि को पूरा करने में या उसकी योजना बनाने में वे ऐसी बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं, जो 'प्राकृतिक नियमों' के विपरीत भी हो सकती है। तत्त्वों के एक स्थान पर एकत्र हो जाने से अकस्मात् ही ऐसा हो गया या इस प्रकार के प्राणियों का निर्माण और योजना किसी सृजनशील कर्ता के बिना ही हो गयी और उनमें तर्क, बुद्धि और अपने वंश को बढ़ाने के लिए प्रजनन क्रिया आदि बातों का स्वयं समावेश हो गया — यह सर्वथा असम्भव है। उस एक शक्ति को मानने से इन्कार करके उक्त कल्पना को प्रश्रय देने से कभी किसी क्रियात्मक प्रयोजन का सिद्ध होना असम्भव है। काफी दूर तक पीछे लौटने पर मनुष्य अन्त में इस परिणाम पर पहुँचेगा कि प्राकृतिक नियमों की विद्यमानता जो विश्व में क्रमबद्धता का वर्णन करती है, किसी ऐसे बुद्धिमान की सूचक है जिसने विश्व के कार्यकलापों को उस ढंग से स्थापित करने का निर्णय किया, जैसा कि हम देखते हैं। सृष्टि की विलक्षणता और संचालन की शाश्वतता किसी विशिष्ट बुद्धिमान और किसी महान् सत्ता की तरफ संकेत ही नहीं कर रही है, अपितु उसके अस्तित्त्व की गवाही दे रही है। भले ही सृष्टि का सम्पूर्ण संचालन स्वतः ही होता दिख रहा है, परन्तु संचालन को गति देने वाली और इस विलक्षण सृष्टि का प्रारुप तैयार करने वाली सत्ता को हम परमात्मा कह सकते हैं और वह है, जिसके अस्तित्त्व से ही सबका अस्तित्त्व है।

विश्व के मूल की खोज करते हुए विज्ञान ने यह बताया है कि कैसे आणविक भौतिकी के वर्तमान ज्ञान के आधार पर बुनियादी कणों की अन्तःक्रियाएँ समस्त ज्ञात तत्त्वों के ढाँचे की व्याख्या कर सकती है। अलबत्ता इस बात की व्याख्या नहीं की जा सकती कि प्रोटोन का उद्गम कैसे हुआ और उसमें ये विशेष गुण कहाँ से आए ? उद्गम की मूल सत्ता —परमात्मा में विश्वास करना ही पड़ेगा।

व्यवहार है जीवन का राजमार्ग

(मानव धर्म श्रृंखला का चतुर्थ (4) पुष्प)

गतांक से आगे....

एक समान है जाति वंश सब।
केवल कविता पाठ नहीं है।
यदि हम नहीं बदलेंगे तो।
मानवता की राह नहीं है।
आठ वर्ष तक रक्त के दानी।
हमको फोन किया करते थे।
बचा लिया हमको गिरने से।
मानवजी से यही कहे थे।
हम सुधरेंगे युग सुधरेगा।(43)

ना ठगो ना ठगाओ

प्रताप भानु..के साथ षड़्यंत्र स्याही
का फार्मूला...मंथरा...कैकेयी

ये सौ तालों की एक चाबी है, आपकी मुठ्ठी में आपकी तकदीर है। मेरी मुठ्ठी में मेरी तकदीर है। ''कर्म प्रधान विश्व करी राखा।'' अरे गीता जी में भगवान श्री योगेश्वर कृष्ण भगवान ने कहा— ''गुण कर्म विभागस्य, चतुर वर्ण सृष्टि मया।'' गुण और कर्म, आपके गुण कैसे हैं ? चरित्रवान रखियेगा, अपना पानी उतरने मत देना, अपने परिवार से बेवफाई मत करना, आपकी पत्नी से बेवफाई मत करना, विश्वासघात मत करना, आपके पतिदेव के साथ भी विश्वासघात मत करना, चरित्र को उज्ज्वल रखना। ये कुलदागी ने बार—बार छला है। कभी राजा प्रताप भानु को भोजन में मांसाहार मिलाकर पाप कर दिया। मैं जब अपने जीवन में स्मरण करता हूँ, किस तरह एक व्यक्ति ने मुझे 18 साल की उम्र में कहा, आपको मैं स्याही बनवाने का फॉर्मूला दिल्ली से दिला दूंगा और मैं आपके लाखों की इनकम करा दूंगा, मैं भी लोभ में आ गया था। आप भी अब तक लोभ में आये होंगे, अब लोभ मत करना। भगवान पर विश्वास करना। मैं जब लोभ में आ गया, उस नालयक ने, ठग ने, जो कुलदागी का सगा—सम्बन्धी था, मुझे दिल्ली में ले जाकर एक गली में कहा — तुम्हारा जितना रूपया है, मैं सब छीन लेता हूँ, सब छीन लिया और कहा मैं तो डाकू हूँ, मैं कातिल हूँ, मैं अधर्मी हूँ। तुम जल्दी से चले जाओ, मैं सात कत्ल कर चुका हूँ। ऐसे अधर्मियों का परिवार होता है — दुष्टों का। कभी इनको रावण बोलते हैं, कभी इनको कुम्भकरण बोलते हैं। अरे रावण तो कभी मरता नहीं, भगवान श्रीराम ने रावण का अन्त किया। फिर भी दुष्टता रूपी रावण, ये काम, ये क्रोध, ये मद, ये लोभ, ये ईर्ष्या, ये द्वेष, ये लालच, ये घमण्ड क्यों आ गया ?

अहंकार से जात है,
राज तेज और वंश।
कहो सज्जन कहाँ गये,
कोरव, रावण, कंश।।(44)

जो मार्कण्डेय ऋषि ने कृपा करके, धर्म की बात, आत्म विश्वास की बात, आत्मोद्धार की बात, इन्द्रियों की जागृति की बात, उत्साह की बात, उमंग की बात। जो—जो कही, वो आपको भाई महिम जी, भाई गुप्ताजी, प्रशान्त भैय्या, कमलाजी, वन्दना जी, कल्पनाजी सब यही बात कह रहे हैं कि मन को कमजोर मत होने देना।

कर क्रोध, समझा क्रोध को,
नुकसान भारी दिया —
नुकसान भारी दिया
मन के तनाव ने ।
मानसिक रोगी किया।।(45)

क्रमशः

मुख्य कार्यकारी अधिकारी—कैलाश 'मानव'
मार्गदर्शक—प्रशान्त अग्रवाल,
जगदीश आर्य, देवेन्द्र चौबीसा
मार्गदर्शिका—कमलादेवी, वन्दना अग्रवाल
सहायक प्रबन्धक—सोहन लाल गाडरी
संपादक—लक्ष्मीलाल गाडरी
संपादन सहयोगी—घनश्याम सिंह राठौड़

मुद्रक—न्यूट्रेक ऑफसेट प्रिंटर्स, प्रकाशक—कमलादेवी, मुद्रण स्थल—13, भोपा मगरी, बी.एस.एन.एल. एक्सचेंज के पास, हिरण मगरी, सेक्टर—3 उदयपुर (राज.), प्रकाशन स्थल— ई—डी—71 बप्पा रावल नगर, हिरण मगरी, सेक्टर—6, उदयपुर (राज.)
सम्पादक—लक्ष्मीलाल गाडरी, आर.एन.आई. नं. RAJHIN/2014/59353 टेलिफोन नं. – 0294—6622222 मो.—09587720000,09928022275,09214657807,09785039524 www.mannkijeet.com, mankijeet2015@gmail.com